भारतीय संगीत में वाद्यों की भूमिका

डॉ० अनिता रानी
श्रीमती बी०डी० जैन गर्ल्स पी०जी० कॉलेज, आगरा

तनु शर्मा
शोधार्थी
डॉ० भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय, आगरा
ईमेलः tanuparijiya@gmail.com

Reference to this paper should be made as follows:

डॉ० अनिता रानी,
तनु शर्मा

भारतीय संगीत में वाद्यों की भूमिका

Artistic Narration 2023,
Vol. XIV, No. 1,
Article No. 5 pp. 32-37

Online available at:
https://anubooks.com/journal/artistic-narration

सारांश

गायन, वादन तथा नृत्य इन तीनों के सम्मिलित रूप को संगीत की संज्ञा दी जाती है। संगीत प्राचीन काल से ही मानव के जीवन का अभिन्न अंग रहा है। गायन, वादन तथा नृत्य कला के माध्यम से मानव का सांस्कृतिक विकास जुड़ा है क्योंकि संगीत मानव संस्कृति का एक हिस्सा है। किसी देश की संस्कृति की पहचान वहाँ के संगीत से की जा सकती है। संगीत में गायन, वादन तथा नृत्य तीनों का ही महत्वपूर्ण स्थान है परन्तु ये तीनों ही कलाएँ एक दूसरे पर आश्रित हैं। वाद्य संगीत के विषय में हमारे प्राचीन शास्त्रकारों द्वारा यह बताया गया है कि वाद्य संगीत के अभाव में गायन व नृत्य कला अपूर्ण सिद्ध होती हैं। वाद्य वादन के संयोग से ही ये दोनों कलाएँ रसोत्पत्ति करने में समर्थ होती हैं तथा कलाकार व दर्शकों को आनन्द प्रदान करती हैं। वाद्यों को संगीत में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। भारत में प्राचीनकाल से ही वाद्यों का एक बहुत बड़ा वर्ग प्रचलित है। शास्त्रीय संगीत के वाद्य व लोक संगीत के वाद्यों के रूप में आधुनिक काल में भी विभिन्न प्रकार के वाद्य प्रचार में हैं। जिनका भारतीय संगीत में महत्वपूर्ण स्थान है।

मुख्य बिन्दु

भारतीय संगीत, वाद्यों की उत्पत्ति, वाद्यों का वर्गीकरण, संगीत में वाद्यों की भूमिका।

भारतीय संगीत

भारत में संगीत की कला वैदिक काल से भी पुरानी है। माना जाता है कि संगीत की उत्पत्ति वेदों द्वारा हुयी है। पंडित शारंग देव ने अपने ग्रन्थ संगीत रत्नाकर में संगीत की परिभाषा इस प्रकार दी है :– ''गीतं, वाद्यं तथा नृत्यं त्रयं संगीत मुच्यते'' इस प्रकार गायन, वादन तथा नृत्य इन तीनों कलाओं के संयोग को संगीत कहते हैं। ये तीनों ही कलाएँ स्वतन्त्र हैं परन्तु फिर भी ये तीनों कलाएँ, एक दूसरे पर आश्रित हैं। इन तीनों ही कलाओं का इतिहास वैदिक काल से भी पुराना है। संगीत की उत्पत्ति वेदों के निर्माता ब्रह्मा द्वारा मानी गई है। ब्रह्मा के द्वारा यह कला शिव को प्रदान की गई तथा शिव के द्वारा सरस्वती को प्राप्त हुई। भारतीय संगीत में सरस्वती को संगीत की अधिष्ठात्री माना जाता है। संगीत की यह धारा, हजारों वर्षों से, भारत की संस्कृति को समृद्ध बनाए हुये हैं। भारत में विभिन्न संस्कृति एवं सभ्यताएँ विद्यमान हैं। यहाँ की सभी सभ्यताओं में संगीत का बड़ा महत्व रहा है। भारत की सामाजिक व धार्मिक परम्पराओं से, संगीत पूर्णतः जुड़ा हुआ है। यहाँ का कोई भी उत्सव संगीत के अभाव में अधूरा माना जाता है। संगीत को भारतीय संस्कृति की आत्मा कहा जाता है। वैदिक काल में संगीत आध्यात्म से जुड़ा हुआ था। स्वरों के द्वारा वेदों का पाठ किया जाता था। इस काल में आध्यात्मिक संगीत को मार्गी व लोक संगीत को देशी संगीत की संज्ञा दी गई थी। वैदिक काल में ही सप्त स्वरों का विकास हो चुका था। इस काल के संगीतज्ञों को सप्त स्वरों का पूर्ण ज्ञान था।

वैदिक काल में वाद्यों का भी काफी प्रचार था। इस काल में तत्, सुशिर व अवनद्ध वाद्यों का काफी प्रयोग होता था। इस काल में, वीणाओं में अपघाटलिका, अघाटी, कर्कटिका, स्तम्बल वीणा, तालुक वीणा, काण्ड वीणा, अलाबु तथा कपिशी, सुशिर वाद्यों में वंशी, पिच्छोला तथा नाड़ी आदि तथा अवनद्ध वाद्यों में दुन्दुभि अथवा भूमि दुन्दुभि आदि वाद्य प्रचार में थे। इस प्रकार कालान्तर में अनेक वाद्यों की उत्पत्ति हुयी तथा समय के साथ वे विलुप्त हो गये। कुछ वाद्यों में परिवर्तन करके कुछ नये वाद्यों का निर्माण किया गया तथा वे नये–नये नामों से प्रचलित हुए।

वाद्यों की उत्पत्ति

हमारे प्राचीन ग्रन्थों में संगीत की उत्पत्ति देवी–देवताओं के द्वारा बताई गई है तथा वाद्यों की उत्पत्ति भी देवी–देवताओं के माध्यम से बताई गई है। हमारे ग्रन्थकारों के अनुसार तत् वाद्य देवताओं से सम्बन्धित है तथा सुशिर वाद्य गंधर्वों से सम्बन्धित हैं। इसी प्रकार अवनद्ध बाद्यों को राक्षसों से व धन वाद्यों को किन्नरों से सम्बन्धित माना गया है।

- एक किवदन्ती के अनुसार– जब श्री कष्ण ने पृथ्वी पर अवतार लिया, तो वे इन चारों वाद्यों को अपने साथ पृथ्वी पर ले आये।
- दूसरी किवदन्ती के अनुसार – पूर्व काल में पृथ्वी पर दस प्रकार के कल्पवृक्ष थे। इनमें से एक का नाम तूर्यांग था। इस कल्प वृक्ष ने मनुष्यों को चार प्रकार के वाद्य प्रदान किये।

- वीणा की उत्पत्ति के विषय में यह कहा जाता है कि समुद्र मन्थन के दौरान जो रत्न निकले थे वीणा भी उनमें से एक थी।
- शिव पुराण के अनुसार वीणा का निर्माण शिव के द्वारा किया गया था। जिस समय पर्वती शयन मुद्रा में थी। तब उनकी शयन मुद्रा को देखकर शिव ने रूद्र वीणा का निर्माण किया।
- मृदंग की उत्पत्ति के विषय में मान्यता है कि जब शिव द्वारा, त्रिपुरासुर विजय के समय नृत्य किया गया था, उस नृत्य की संगति हेतु ब्रह्मा द्वारा एक मिट्टी के ढ़ाँचे का वाद्य तैयार किया गया। जिसे मृदंग कहा गया।
- जैन मतानुसार 'मुरज' नामक वाद्य का अविष्कार 'शंखनिधि' द्वारा हुआ माना जाता है। इस प्रकार की बहुत सारी मान्यताएँ हैं जो वाद्यों की उत्पत्ति से सम्बन्धित है।

वाद्यों का वर्गीकरण

भारतीय संगीत में वाद्यों का बहुत महत्व है। बिना वाद्य वादन के संगीत सम्पूर्ण नहीं माना जाता। यहाँ का प्रत्येक उत्सव, त्यौहार, बिना वाद्य वादन के पूर्ण नहीं होता। संगीत में वे उपकरण वाद्य कहलाते हैं जिनसे एक विशेष प्रकार की ध्वनि की उत्पत्ति होती है। हमारे देश में विभिन्न प्रकार के वाद्य पाये जाते हैं जिनमें से कुछ का प्रयोग शास्त्रीय संगीत में होता है तथा कुछ का प्रयोग साधारण जन मानस में किया जाता है। शास्त्रीय संगीत के वाद्यों में सितार, तानपुरा, तबला, मृदंग, वीणा तथा लोक संगीत के वाद्यों में झांझ, मंजीरा, ढ़ोलक, सारंगी, एक तारा आदि वाद्य आते हैं। भारतीय समाज में विभिन्न प्रकार की संस्कृतियाँ निवास करती हैं। सभी संस्कृतियों की भिन्नता के कारण विभिन्न प्रकार के वाद्य यंत्र भारत में प्रचलित हैं। वाद्यों की संख्या अधिक होने के कारण इनका वर्गीकरण करना आवश्यक हो गया। चूँकि भारतीय संगीत में वाद्यों के विभिन्न प्रकार प्रचलित हैं अतः भारतीय संगीत शास्त्रज्ञों ने सभी वाद्यों को चार वर्गों– तत्, अवनद्ध, सुशिर व घन, में विभाजित किया है।

तत् वाद्यों के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार के तन्त्री वाद्यों को रखा गया है जैसे– वीणा, सितार, सरोद, सारंगी, सुरबहार, सुर सिंगार, रबाब आदि। अवनद्ध वाद्यों के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार के चर्म से मढ़े हुऐ वाद्यों को रखा गया है। जैसे– मृदंग, तबला, पटह, हुडुक्का, ढक्का, रूंजा, डमरू, दुन्दुभि, भेरी तथा तुम्बरी आदि। सुशिर वाद्यों के अन्तर्गत फूंक से अथवा वायु के माध्यम से बजने वाले वाद्य जैसे– वंशी मुरली, पाविका, पुंगी, शहनाई तथा नागस्वरम आदि तथा घन वाद्यों के अन्तर्गत–झांझ, मंजीरा, करताल, घंटा, कांस्यताल, जयघण्टा आदि को रखा गया है। इस प्रकार के वाद्यों में धातु की बनी दो चीजों को आपस में टकराकर ध्वनि उत्पन्न की जाती है। इस प्रकार हमारे शास्त्रकारों ने रचना व उपयोग के आधार पर वाद्यों को चार भागों में बाँटा है। संगीत में इन चारों ही प्रकार के वाद्यों का विशेष महत्व है। वैदिक काल में वाद्यों का वर्गीकरण प्राप्त नहीं होता है परन्तु इस युग में भी चारों प्रकार के वाद्यों का वर्णन प्राप्त होता है।

इसी प्रकार रामायणकाल व महाभारत काल में भी तत्, अवनद्ध, घन तथा सुशिर वाद्यों के वादन के प्रमाण प्राप्त होते हैं। बहुत सारे वाद्यों के एक साथ वादन को वृन्द–वादन कहा जाता था। पाणिनी की अष्टाध्यायी में वृन्द–वादन के लिए 'तुर्य' शब्द का प्रयोग पाया जाता है। बौद्ध साहित्य व हरिवंश पुराणों में भी तत्, अवनद्ध, घन व सुशिर इन चारों वाद्यों का प्रचुर उल्लेख प्राप्त होता है। हमारे प्राचीन शास्त्रकारों ने, अपने ग्रन्थों में, वाद्यों की संख्या में मतभेद बताया ह। किसी ग्रन्थकार ने चार व किसी ग्रन्थकार ने पाँच वर्गो में वाद्यों को बाँटा है। पाँच वर्ग मानने वाले ग्रन्थकारों ने कंठ की ध्वनि को भी इस वर्ग में शामिल किया है परन्तु भरत के पश्चात के सभी ग्रन्थकारों ने अपने ग्रन्थ में चतुर्विध वाद्य वर्गीकरण को मान्यता दी है।

संगीत में वाद्यों की भूमिका

प्राचीन काल से जब से संगीत का अस्तित्व माना जाता है तभी से वाद्यों का सम्बन्ध संगीत से जुड़ा हुआ है। नाट्यशास्त्र के रचयिता भरत तथा संगीत रत्नाकर के रचयिता शारंगदेव आदि आचार्यो ने संगीत के सैध्दान्तिक पक्षों को सुलझाने के लिए वाद्यों को माध्यम बनाया है। भरत व शारंगदेव आदि ने श्रुतियों, स्वरों, ग्राम व मूर्च्छनाओं को समझाने हेतु वीणा का सहारा लिया है। संगीत को स्थिर एवं व्यवस्थित रूप प्रदान करने में वाद्यों का महत्वपूर्ण स्थान है। शास्त्रीय गायक को तानपुरे व तबला के साथ गायन करने से निरंतरता प्राप्त होती है। बिना वाद्यों की संगति के गायन, एक बिना मांझी की नाव के समान होता है जिसकी दिशा सुनिश्चित करना कठिन होता है। अशोक कुमार 'यमन' द्वारा अपनी पुस्तक संगीत रत्नावली में कहा गया है कि गायक के मन के सुप्तभाव सहायक वाद्यों की सांगीतिक ध्वनि से जागृत होकर क्रियाशील होते है। वास्तव में वाद्य संगीत, कण्ठ संगीत और नृत्य के पूर्व, मध्य और अन्त तीनों में स्थित है, जो इन दोनों कलाओं को सहयोग देता है।

प्राचीन काल से ही भारतीय संगीत में विभिन्न प्रकार के वाद्यों का प्रयोग होता रहा है। प्राचीन काल में वीणा, आडम्बर, तुणव, शंख, पाणिघ्न, वंशी, दुन्दुभी आदि वाद्यों का उल्लेख मिलता है। इस काल में सभी प्रकार के तन्त्री वाद्यों को वीणा कहा जाता था। जैसे– एक तन्त्री वीणा, त्रितन्त्री वीणा, सप्त तन्त्री वीणा आदि। वीणा शब्द का सर्वप्रथम वर्णन यजुर्वेद में ही मिलता है। आडम्बर एक अवनद्ध वाद्य है तथा शंख फूँक से बजने वाला वाद्य है जो आज भी इसी रूप में प्रचलित है। इस प्रकार प्राचीन काल में वाद्यों के विभिन्न प्रकार प्रचलित थे जिनका प्रयोग विभिन्न उत्सव व अवसरों पर किया जाता था।

स्वर वाद्यों का कार्य, गायक, वादक व श्रोता के ध्यान को स्वर की ओर केन्द्रित करना होता है। गायन का संयोग स्वर व ताल वाद्य से होने पर वह पूर्ण स्वरूप प्राप्त करता है। गायक की कल्पना को जब वाद्यों का सहयोग प्राप्त होता है तब वे अपनी स्पष्टता व निश्चितता के कारण संगीत का रूप धारण कर लेती है। कोई भी गायन तभी सम्पूर्ण रूप धारण कर सकता है जब उसे वाद्य यन्त्रों का सहयोग प्राप्त हो।

संगीतात्मक वातावरण की सृष्टि में, वाद्य संगीत जितना सामर्थ्यवान है उतना गायन अथवा नृत्य कला नहीं है। ये दोनों ही कलाएँ, इस उद्देश्य की प्राप्ती हेतु वाद्य संगीत पर आश्रित हैं। वाद्य के अभाव में नृत्य की कल्पना भी नहीं की जा सकती। नृत्य करते समय जब अवनद्ध वाद्य बजाया जाता है, तो वह नर्तक व दर्शक दोनों के मन में संवेंगो को उत्पन्न करता है, जिससे ऊर्जा का संचार होता है। जो नर्तक व दर्शक दोनों को आनन्द की प्राप्ति कराता है। वाद्य वादन का प्रयोग केवल गायन के व नृत्य के साथ ना होकर स्वतन्त्र रूप से भी होता है तथा स्वतन्त्र रूप से भी वह श्रोताओं को उतना ही आनन्द प्राप्त कराता है जितना कि गायन, वादन व नृत्य के संयोग से होता है। हमारे भारतीय संगीत में स्वतन्त्र वादन का विशेष प्रचार है तथा कई भारतीय वाद्य कलाकार स्वतन्त्र वादन के लिए प्रसिद्ध है। ताल वाद्य के रूप में जहाँ तबला को गायन व नृत्य की संगति करने के लिये प्रयोग किया जाता है, वहीं तबला एक स्वतन्त्र वाद्य के रूप में भी अपनी पहचान बनाये हुये है। स्वर वाद्यों के विषय में भी हमारे शास्त्रज्ञों द्वारा कहा गया है कि स्वर वाद्यों द्वारा भी स्वतन्त्र रूप से श्रोताओं को आनन्द की प्राप्ति हो सकती है क्यों कि एक स्वर वाद्य से निकलने वाली स्वर लहरियाँ रसोत्पत्ति में समर्थ होती है तथा श्रोताओं को आनन्द प्रदान करती है। इस प्रकार हमारे भारतीय वाद्यों का प्रत्येक प्रकार, अपना विशिष्ट स्थान रखता है।

हमारे प्राचीन शास्त्रकारों ने तत् वाद्यों का महत्व बताते हुए कहा है कि तत् वाद्यों में सबसें प्रमुख वीणा को माना है। वीणा के मुख्यतः दो भेद माने हैं– 'श्रुति वीणा' और 'स्वर वीणा'। श्रुति वीणा का कार्य लय अथवा गीत का अनुकरण करना नहीं है यह केवल छेड़ी जाती है तथा गीत का अनुकरण करने वाली तथा स्वतन्त्र वादन में प्रयुक्त की जाने वाली वीणा 'स्वर वीणा' कहलाती है। प्राचीन संगीत में अनेक प्रकार की वीणाएँ प्रयोग में आती थी जैसे एकतन्त्री वीणा, मत्तकोकिला वीणा, किन्नरी वीणा, कच्छपी वीणा व घोषवती वीणा। इन्हीं के परिवर्तित रूप आधुनिक तन्त्री वाद्यों में देखे जाते हैं। अवनद्ध वाद्यों में मृदंग को प्राचीन संगीत में प्रमुख वाद्य माना जाता था। संगीत का गायन मृदंग के माध्यम से होता था परन्तु आधुनिक ताल वाद्यों में तबला तथा मृदंग दोनों ही ताल वाद्य संगीत में प्रमुख स्थान रखते है। आधुनिक समय में तबले का प्रयोग गायन की प्रत्येक शैली के साथ होने लगा है। शास्त्रीय संगीत व सुगम संगीत में तबले का प्रयोग मुख्य रूप से होता है। तानपुरे का स्थान भी शास्त्रीय संगीत में अत्यन्त महत्वपूर्ण है। तानपुरे का कार्य शास्त्रीय गायन में संगति के साथ–साथ, उसमें निरंतरता बनाये रखना भी है।

भारत में शास्त्रीय संगीत के साथ–साथ लोक संगीत भी अपनी एक महत्वपूर्ण जगह बनाये हुऐ है। जहाँ शास्त्रीय संगीत कठोर नियमों में बन्धा हुआ है वहीं लोक संगीत का स्थान मानव के हृदय में है। उसकी सरलता ही उसकी पहचान है। लोक संगीत किसी भी परंपरा व नियमों से मुक्त है। भारत में प्राचीन काल से ही विभिन्न प्रकार के लोक वाद्य प्रचलित हैं जिनमें

सारंगी, रावणहत्था, इकतारा, अलगोजा, सिंगी, तुरही, शंख, बीन, चंग, झाँझ, घुँघरू, चिमटा, मुखचंग, घटम् अथवा मटका, ढोलक, नगाडा, घंटा आदि वाद्य आते है। लोक संगीत के सभी वाद्ययंत्र हमारी सांस्कृतिक धरोहर का प्रतिरूप है। जिनके द्वारा समाज की भावनाएँ अभिव्यक्त होती है।

संगीत में गायन व नृत्य के भीतर छिपे सौन्दर्य को बाहर निकालने में वाद्य संगीत अपनी अहम भूमिका निभाता है। वाद्य के बिना नृत्य की तो कल्पना भी नहीं की जा सकती क्यों कि ये दोनों हीं कलाएँ ताल पर आधारित है। इसी प्रकार गायन में एक स्वर वाद्य एवं एक ताल वाद्य का होना अत्यावश्यक है। इसके अभाव में गायन, अपने प्रमुख कार्य, यानि श्रोताओं को आनन्दानुभूति कराने में सफल नहीं रहेगा। संगीत का प्रमुख उद्देश्य जन–मन–रंजन करना है किन्तु इस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु इन कलाओं का संयोग अत्यावश्यक है।

आधुनिक समय में पार्श्व संगीत में भी वाद्यों का प्रयोग स्वतन्त्र रूप से व सामूहिक रूप से होता है। सामूहिक रूप से किये जाने वाले वादन को वाद्य–वृंद की संज्ञा दी गई है। पार्श्व संगीत में नाटक तथा चलचित्रों में संवाद के साथ व वातावरण के अनुकूल विभिन्न प्रकार के वाद्यों का प्रयोग किया जाता है। इनका प्रयोग रसोत्पत्ति में सहायक होता है अतः यह दर्शकों को आनन्द प्रदान करते है।

निष्कर्ष

भारतीय संगीत में वाद्यों के महत्व का अध्ययन करने से यह ज्ञात होता है कि भारतीय संगीत में वाद्यों का स्थान शरीर व आत्मा के समान है। जिस प्रकार आत्मा के अभाव में शरीर का कोई महत्व नहीं रह जाता, उसी प्रकार वाद्यों के अभाव में संगीत अपूर्ण ही रहता है। संगीत की पूर्णता हेतु गायन, वादन व नृत्य ये तीनों ही कलाएँ महत्वपूर्ण है। इन कलाओं के संयोग से ही मानव को आत्मिक आनन्द की प्राप्ति होती है। अतः वाद्य संगीत का भारतीय संगीत में महत्वपूर्ण स्थान है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. कुमार, अशोक. (2021). 'यमन'. संगीत रत्नावली. पुनमुर्द्रण. अभिषेक पब्लिकेशन्जः एस0 सी0 ओ0 57–59 सेक्टर 17–सी, चण्डीगढ़. पृष्ठ **12,22,411,412,413,415,420,421.**
2. (1999). वसंत : संगीत विशारद. संस्करण–23. संगीत कार्यालयः हाथरस (उ0प्र0). पृष्ठ **12,570,575.**
3. गर्ग, लक्ष्मीनारायण. (1978). निबंध संगीत. संस्करण–1. संगीत कार्यालयः हाथरस (उ0प्र0). पृष्ठ **154,155.**
4. hi.m.wikipedia.org. भारतीय संगीत (लेख)।